International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 11-12-2022, Accepted: 10-01-2023, Published: 25-01-2023
Volume 5, Issue 1, 2023, Page No. 16-18

आधुनिक संस्कृत साहित्य में लोकजीवन की अवधारणा (लोकगीतों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
आधुनिक साहित्य में लोकजीवन महत्वपूर्ण विमर्श का आधार है, क्योंकि इसका संबंध परंपरा और संस्कृति से है । लोक साहित्य सामूहिक राग है, जिसमें पर्सनल कुछ नहीं होता है, यदि है तो सामूहिक। लोक स्वयं में एक संपूर्ण शब्द है । लोक शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घञ् प्रत्यय' से बना है जिसका अर्थ है – देखने वाला । वास्तव में लोक का अर्थ उस समाज से है जो विस्तृत रूप से इस पृथ्वी पर फैला हुआ है और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित हैं । लोकसत्ता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन मनुष्य जाति का इतिहास है । साहित्यकार के काल्पनिक जगत की आधारभूमि का निर्माण लोक से होता है । वह अपनी बात कहने के लिए लोककथाओं को आधार बनाता हैं, नहीं तो किसी लोग जनश्रुति को अपनी काव्य का अधार बनाता है । लोकगीत की परंपरा भारत में अत्यंत प्राचीन है संभवत सृष्टि के आरंभ से ही इसकी परंपरा रही है । लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा है । उनमें जीवन के सुख–दुख, मिलन, विरह जैसे उतार–चढ़ाव की भावनाएं व्यक्त हुई हैं । सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं । इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है । लोकगीतों को मात्र ग्राम गीत नहीं कहा जा सकता । लोकगीतों की कई विधाएँ संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है । वस्तुतः लोकगीत, लोकजीवन का अभिन्न अंग है । केवल मनोरंजन या वैचारिक मंथन ही उनका लक्ष्य नहीं है बल्कि उनका मूल प्रयोजन मानव मात्र के जीवन से जुड़ा हुआ है एवं उसके कल्याण से जुड़ा हुआ है ।

मूल शब्दः लोकसंस्कृति, लोकजीवन, लोकगीत, संस्कृत साहित्य, सांस्कृतिक चेतना, आधुनिक साहित्य, विविधता में एकता

लोक संस्कृति के लालित्य का सजीव रूप 'लोकजीवन' है । आधुनिक साहित्य में लोकजीवन महत्वपूर्ण विमर्श का आधार है, क्योंकि इसका संबंध परंपरा और संस्कृति से है । लोक साहित्य सामूहिक राग है, जिसमें पर्सनल कुछ नहीं होता है, यदि है तो सामूहिक । लोक साहित्य में ऐतिहासिक दृष्टिकोण, बौद्धिकता, वैज्ञानिकता का आभाव होता है । किसी देश की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वहाँ के लोकजीवन का अध्ययन करना आवश्यक है । युग–युग का जनजीवन इसमें परिलक्षित होता है । लोकजीवन आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से प्राचीन परंपराओं, विश्वासों, प्रथाओं से अभिभूत रहता है । इसलिए लोकतत्व के अंतर्गत रीति – रिवाज, त्योहार, पूजा, अनुष्ठान, व्रत, जादू – टोना आदि आते हैं । किसी विशेष अंचल की स्थानीय लोकसंस्कृति उस अंचल को लोकमानस के आधार पर संघटित होती है और लोक चेतना सदैव समाज की परंपरा और परिस्थितियों पर आधारित होती है ।

लोक स्वयं में एक संपूर्ण शब्द है । लोक शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घञ् प्रत्यय' से बना है जिसका अर्थ है – देखने वाला । वास्तव में लोक का अर्थ उस समाज से है जो विस्तृत रूप से इस पृथ्वी पर फैला हुआ है और जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित हैं । लोकसत्ता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन मनुष्य जाति का इतिहास है । प्राचीन काल से ही लोक को साहित्य में स्थान मिल गया था जिसका प्रमाण हमें विश्व के प्राचीनतम धर्म ग्रंथ ऋग्वेद में मिलता है, जिसमें लोक का अर्थ 'स्थान' अथवा 'संसार' के अर्थ में लिया गया है–

''सखे विष्णो वितरं विक्रस्व द्योर्देहि लोक वज्राय विष्कभे ।''[1]

यहां तक की नाट्यशास्त्र में भी लोक के महत्व की बात की गई है और लोक का अर्थ 'संसार' से लिया गया है ।

"लोके गुणातिरिकानां गुणानां यत्र नामभिः ।
एको हि शब्द्यते तन्तु विज्ञेयं गुणकीर्तनम् ।''[2]

इसी तरह अनेक शास्त्रों एवं उपनिषदों में लोक शब्द के महत्व को समझाया गया है । इस प्रकार देखने पर पता चलता है कि लोक का अर्थ शास्त्र एवं पुराणों में व्यापक एवं काल्पनिक है किंतु साधारणतया इसे लोग एवं स्थान के अर्थ में ही समझा जाता है । संस्कृत साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है । यहां तक कि अनेक आचार्यों ने लोक को साहित्य के लिए प्रमुख साधन माना है । उनका मानना है कि बिना लोक परंपरा की समझ के किसी भी प्रकार के साहित्य का सृजन नहीं किया जा सकता है ।

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुभवे ।।"[3]

साहित्यकार के काल्पनिक जगत की आधारभूमि का निर्माण लोक से होता है । वह अपनी बात कहने के लिए लोककथाओं को आधार बनाता हैं, नहीं तो किसी लोग जनश्रुति को अपनी काव्य का अधार बनाता है । साहित्यकार अपने लेखन की सामग्री लोक से ही ग्रहण करता है और जब कोई नई दृष्टि फैलानी होती है तो भी वह लोकजीवन को आधार बनाता है । वस्तुतः लोक कथाएं समाज के लोग का दृष्टिकोण बदलने में सार्थक होती है । वह चाहे धार्मिक क्षेत्र में हो, राजनीतिक क्षेत्र में हो, आर्थिक क्षेत्र में हो या सामाजिक क्षेत्र में हो । कहा भी गया है की लोकसाहित्य वस्तुतः जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा जाता है । साहित्य और लोक का संबंध अभिन्न है । "साहित्य की दुनिया में लोकजीवन छन–छन कर आता है । इसलिए साहित्यिक गीत मँजे–सुधरे होते हैं और उनकी चमक–दमक गिने–चुने लोगों को ही आसानी से अपनी ओर खींच सकती है । पर इस पर मांजने–सुधारने और छानने में जीवन की बहुत सी हरियाली भी कट–छंट कर बाहर ही छूट जाती है जिससे साहित्य के गीतों में उबले छने पानी का आस्वादन होता है, जबकि लोकगीतों में ताजे पानी का आनंद"[4] हमेशा बरकरार रहता है ।

संस्कृत साहित्य में लोक जीवन की की परंपरा प्राचीन काल से ही चलती आ रही है । भरतमुनि से लेकर वर्तमान तक के कवि व लेखक अपने साहित्य में लोकजीवन को कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में अवश्य लाते हैं । संस्कृत साहित्य में लगभग सभी विधाओं में लोक जीवन को दर्शाया गया है, परंतु लोकगीतों के माध्यम से लोकजीवन का जो रूप उभरकर सामने आता है वह किसी अन्य साहित्यिक विधा से नहीं आता । लोकगीत की परंपरा, संस्कृत साहित्य की तरह ही लगभग सभी साहित्य में उपलब्ध है । भारतीय संस्कृति को जानने के लिए लोकगीत सबसे उपयोगी साधन है, इसमें काव्य रुप से ओतप्रोत स्वर, लय– ताल में विविधता में एकता के साक्षात् प्रतीक हैं । परंपरा से प्राप्त और जन जीवन से जुड़े इन लोकगीतों में निहित सरस साहित्य को उजागर करने और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने श्रेय पंडित रामनरेश त्रिपाठी को जाता है, जिन्होंने आधुनिक साहित्य में लोकगीत सर्वप्रथम प्रयोग किया ।

लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा है । उनमें जीवन के सुख–दुख, मिलन, विरह जैसे उतार–चढ़ाव की भावनाएं व्यक्त हुई हैं । सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं । इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है । लोकगीतों को मात्र ग्राम गीत नहीं कहा जा सकता । 'हिंदी साहित्य कोश'[5] में लोकगीत के तीन अर्थ दिए गए हैं– लोक में प्रचलित गीत, लोक निर्मित गीत व लोकविषयक गीत । किंतु वास्तव में लोक गीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत से ही है । जिसे दो अर्थों में समझा जा सकता है– अवसर विशेष के प्रचलित गीत और परंपरागत गीत । लोक द्वारा निर्मित होने पर भी लोकगीत को किसी व्यक्ति विशेष से जोड़ा जा सकता है । राल्फ वी विलियम्स का कथन है कि, "लोकगीत न पुराना होता है न नया । वह तो जंगल में एक वृक्ष जैसा है जिनकी जड़े तो दूर जमीन में धंसी हुई है परंतु जिनमें निरंतर नई–नई डालियां पल्लव और फल लगते हैं ।"[6] देवेंद्र सत्यार्थी लोकगीत का मूल जातीय संगीत में ही मानते हैं ।

लोकगीतों का विस्तार कहां तक है इसे नहीं बताया जा सकता किंतु यह परंपरा से लेकर आज आधुनिक (अर्वाचीन) समय में भी संस्कृत साहित्य में देखने को मिलता है । सदियों से चले आ रहे हैं धार्मिक विश्वास एवं परंपराएं इसमें जीवित है । ये हृदय की गहराइयों से जन्मे हैं । श्रुति परंपरा से यह अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं । अतः इनमें तर्क कम, भावना अधिक है । इनमें न तो छंदशास्त्र की बाध्यता है न ही अलंकारों की बोझिलता बल्कि इनमें तो लोकमानस का स्वच्छ और पावन गंगा जैसा प्रवाह है ।

लोकगीत की परंपरा भारत में अत्यंत प्राचीन है संभवत सृष्टि के आरंभ से ही इसकी परंपरा रही है । लोकगीतों का बीज हमारे प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में उपलब्ध है । वाल्मीकि रामायण में श्री राम जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत गीता में श्रीकृष्ण जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत गाने का वर्णन भी मिलता है । संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, ढ़ेकी चलाना, खेती निराना, चरखा कातना आदि च समय में झुंड बांधकर गीत गाने का उल्लेख मिलता है । 12वीं शताब्दी में एक कवयित्री 'विज्जका' ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का बड़ा मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है–

"विलासमसृणोल्लसन् मुसललोलदो: कन्दली
परस्पर परिस्खलद् वलयनि: स्वनोद्बन्धुरा:
लसन्ति क्लहुंकृति प्रसभकम्पतोर: स्थल
त्रुटद् गमकंस कुला: कलभगण्डनी गीतय:"[7]

प्राचीन काल से ही संस्कृत साहित्य में लोक गीत उपलब्ध है, लगभग सभी श्रेष्ठ विद्वानों एवं आचार्यों ने अपने काव्य में लोकगीत लिखें हैं । महाकवि कालिदास से लेकर, भारवि, भास, विशाखदत्त जैसे कवियों ने अपने ग्रंथों में लोकजीवन से संबन्धित गीतों का प्रयोग किया है । महाकवि कालिदास ने एक ओर तो मेघदूत में यक्ष के घर के वैभव का चित्र खींचा है तो दूसरी ओर रघुवंश में धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोकगीतों का उल्लेख किया गया–

"इक्षुच्छायानिषादिन्य: तस्य गोप्तुगुणोदयम्
आकुमारकथोद्घातं शालिगोत्योजगुर्यश:"[8]

आधुनिक संस्कृत साहित्य में लोकगीतों की एक सुदृढ़ एवं लंबी परंपरा रही है । वर्तमान में गांव–घर की, किसानों की तथा खेत खलियानों की बातें और पनघट–चौबारे के दृश्य संस्कृत कविता के अभिन्न हिस्सा बनते जा रहे हैं । इस क्रम में अनेक कवियों ने लोकगीतों के संस्कारों से अनुप्राणित होकर संस्कृत–काव्य रचना में अभिनव प्रयोग किया हैं । तेलुगू भाषा के लोकप्रचलित छंदों में श्रीभाष्यमम् विजयसारथी ने अनेक संस्कृत कविताओं का प्रणयन किया है । डॉ अभिराज राजेंद्र मिश्र, श्रीमती नलिनी शुक्ला, श्रीमती पुष्पा दीक्षित, रामकरण शर्मा, रसिक बिहारी जोशी, राजेन्द्र मिश्र, बच्चूलाल अवस्थी आदि कवियों ने अनेक लोकगीतों की रचना की है ।

"भरिष्याम्याहरिष्यामि च
सलिलकुम्भं कियत्कालम् ! भरिष्या.....
शनैर्यदि यामि चिररात्राय
विल पिष्यति गृहे बाल: ॥
द्रुतं यदि यामि वसनं मे
भवेदाद्र सलिलवेग़ै: ॥ भरिष्या....."[9]

डॉ. अभिराज राजेंद्र मिश्र की लोकगीतपरक रचनाओं को पर्याप्त सराहना भी प्राप्त हुई है । भट्ट मथुरानाथ शास्त्री द्वारा प्रवर्तित परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अनेक कवियों ने ब्रज तथा उर्दू के छंदों को अपनाकर उत्तम संस्कृत कविताएं संस्कृत में लिखी हैं । डॉ. अभिराज राजेंद्र मिश्र ने लोकगीत की विधा को संस्कृत काव्य रचना क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का प्रशस्य कार्य किया है । इनकी स्कंधहारीयम् (कहरवा) चौत्रकम् (चौती) ने प्रशंसा की धुन और छंद को लेकर संस्कृत में लिखी गयी अनेक मधुर–गीतों की प्रायः सभी ने प्रशंसा कि है । भोजपुरी तथा अवधि की लोकगीतों की विषयवस्तु तथा छंद–संस्कार का गहरा प्रभाव कुछ नए संस्कृत कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है । डॉ भास्कराचार्य त्रिपाठी ने 'सौहर' गायन शैली से प्रभावित होकर अनेक गीत रचनाएं संस्कृत में प्रस्तुत किये । अनंतराम मिश्र ने सवैया, दोहा आदि छंद तथा सूरदास के पदों के समान गीतियों में रचनाएं प्रस्तुत की है । शिवसेना शर्मा ने हिंदी लोक नवगीतों से प्रभावित गीत भी उल्लेखनीय है । इसी तरह नए विषयों पर भी लोकगीतों की रचना संस्कृत साहित्य में की गई है –

"वैभवं कामये न धनं कामये
केवलं कामिनी दर्शनं कामये
सृष्टि कार्येण तुष्टोस्म्यहं यद्यपि
चापि सौन्दर्य संवर्धनं कामये।
****
स्कूटी यानेन गच्छति स्वकार्यालयं
अस्ति मार्गे वृहद् गत्यवरोधकम्
दृश्यते कूर्दयन् वक्ष पक्षी द्वयं
पथिषु सर्वत्र अवरोधकम् कामये।"[10]

वर्तमान में अनेक लोकगीत स्त्री के जीवन पर मिलते है । जिसमें उसका प्रियतम पैसे कमाने के लिए बाहर (शहर) चला जाता है । कई लोकगीतकारों ने लोकगीत के माध्यम से उसके शहर जाने के बाद स्त्री के मनोदशा का वर्णन किया है ।

"प्रेषितं न किञ्चित् सन्देशम्
हा गतः प्रियतमः विदेशम् ।।
खण्डितं तु सप्तपञ्च वचनानुबन्धं
कस्यचिदागच्छति षडयन्त्रस्यगन्धं ।
****
न जानेप्यहं तेन त्यक्ता किमर्थम्
अधुनाहं थकितास्मि पथ दर्शं–दर्शं
किमर्थं ददाति ह्रदय क्लेशम् ।
हा गतः प्रियतमः विदेशम् ।।"[11]

लोकगीतों की एक लंबी परंपरा आधुनिक संस्कृत साहित्य में उपस्थित है । चाहे वह संस्कारों के रूप में हो, मांगलिक ऋतुओं के रूप में हो, व्रतों व त्योहार के रूप में हो, नृत्य और रस के रूप में हो या जाति या श्रमगीतों के रूप में हो । लोकगीतों की कई विधाएँ संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है । वस्तुतः लोकगीत, लोकजीवन का अभिन्न अंग है । केवल मनोरंजन या वैचारिक मंथन ही उनका लक्ष्य नहीं है बल्कि उनका मूल प्रयोजन मानव मात्र के जीवन से जुड़ा हुआ है एवं उसके कल्याण से जुड़ा हुआ है ।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद संहिता – श्रीराम शर्मा (संपादित), पृष्ठ संख्या–285
2. श्रीभरतमुनि प्रणीत सचित्र नाट्यशास्त्र, द्वितीय भाग,– बाबूलाल शुक्ल शास्त्री(संपादित), पृष्ठ संख्या–285
3. काव्य प्रकाश– मम्मट , संपादित आचार्य विश्वेश्वर
4. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ संख्या–70
5. हिन्दी साहित्य कोश दृस. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
6. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम दृ डॉ.शांति जैन,पृष्ठ संख्या– 2
7. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम दृ डॉ.शांति जैन,पृष्ठ संख्या– 4
8. रघुवंशमहाकाव्य दृ कालिदास,4/20
9. जलवाहिनी दृ रामकरण शर्मा (भोजपुरी लोकगीत का संस्कृत अनुवाद)
10. सौन्दर्य दशर्नम् – शास्त्री नित्यागोपाल कटारे
11. पञ्चगव्यमम्– शास्त्री नित्यागोपाल कटारे